

## पाठ्यपुस्तकों का मुकाम

□ सुशील शुक्ल

शिक्षा के बड़े वृत्त में पाठ्यपुस्तकों को आज भी ऊंचा मुकाम हासिल है। विशेषज्ञों द्वारा सरकारी तंत्र के तहत इनका निर्माण होना भी शायद एक वजह हो। पिछले कुछ सालों में पाठ्यपुस्तकों विभिन्न वजहों से चर्चा का मुद्दा बनती रही हैं। यह एक आम धारणा हो चली है कि राजनैतिक दल अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर इन पाठ्यपुस्तकों के जरिए अपनी विचारधारा के हिसाब से किताबें तैयार करवाते हैं। शायद इसलिए सत्ता प्राप्त करते ही पुस्तकों बदलने की घोषणा अक्सर शपथ ग्रहण कार्यक्रम से पहले हो जाया करती है। बात जब राज्य शैक्षिक शोध प्रशिक्षण परिषद (एस.सी.ई.आर.टी.) जैसी संस्थाओं द्वारा बनाई किताबों की हो रही हो तब तो इन पाठ्यपुस्तकों की औकात कुछ और बढ़ जाती लगती है। इसकी एक वजह शायद यह हो कि इन किताबों का उपयोग करने वालों में बड़ी संख्या उस वर्ग की है जो अपने परिवार से पहली बार किसी स्कूल की सीढ़ियां चढ़ रहे होते हैं। ऐसे परिवारों में किताबों के नाम पर सिर्फ पाठ्यपुस्तकें ही उपलब्ध होती हैं (कभी-कभी वे भी नहीं)।

समाज का यह बड़ा हिस्सा इन किताबों की तरफ बड़ी आशा से देखता है। बच्चों के हाथ में इन किताबों को देखकर इस वर्ग की आंखें आज भी सपनों से भर जाती हैं। पाठ्यपुस्तकों को यह दर्जा प्राप्त होने से क्या इन्हें सजगता से बनाए जाने की जिम्मेदारी और बढ़ नहीं जाती है ?

इन किताबों से एक हद तक एक ऐसी भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती है कि वे न सिर्फ पाठक को अन्य पुस्तकों की तरफ जाने के लिए उकसाएंगी बल्कि आसपास की दुनिया को समझने के लिए एक पुल का काम भी करेंगी। समाज में व्याप्त तमाम रूढ़ियों पर सवाल उठाने का नजरिया पैदा करने की तरफ एक कदम चलेंगी तथा उन्हें ध्वस्त करने की हिम्मत भी पैदा करेंगी। वे आसपास के प्रति संवेदनशीलता पैदा करेंगी। रुककर देखने की प्रवृत्ति तथा मौलिक चिन्तन को बढ़ावा देने की कोशिश करेंगी। (इस बात से सहमत होते हुए भी कि स्कूली किताबें अपेक्षाओं के बोझ तले दबी होती हैं)। इस लेख में मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र द्वारा तैयार की गई हिन्दी की किताबों के (चौथी से आठवीं कक्षा) संदर्भ में कुछ पहलुओं पर संक्षिप्त चर्चा की गई है।

आप चौथी से आठवीं कक्षा की हिन्दी की कोई भी किताब उठा लीजिए। पाठों को एक सरसरी निगाह से देखने पर भी कुछ बातें साफ नजर आ जाएंगी। इन किताबों में चुनी गई सामग्री का एक बड़ा हिस्सा एकालाप तथा आक्रामकता से ग्रस्त है। पाठों को इस शैली में लिखा गया या तैयार किया गया है कि उनमें कोई सवाल उठाए बगैर चीजों को जस का तस स्वीकार कर लेने का एक अनकहा-सा आग्रह दिखता है। कुछ सामग्री में भावनाओं का एक स्पष्ट ज्वार उठाने की कोशिश दिखती है, चाहे वह देशभक्ति आधारित कविताओं की बात हो या फिर प्रार्थनानुमा तुकबन्दियां।



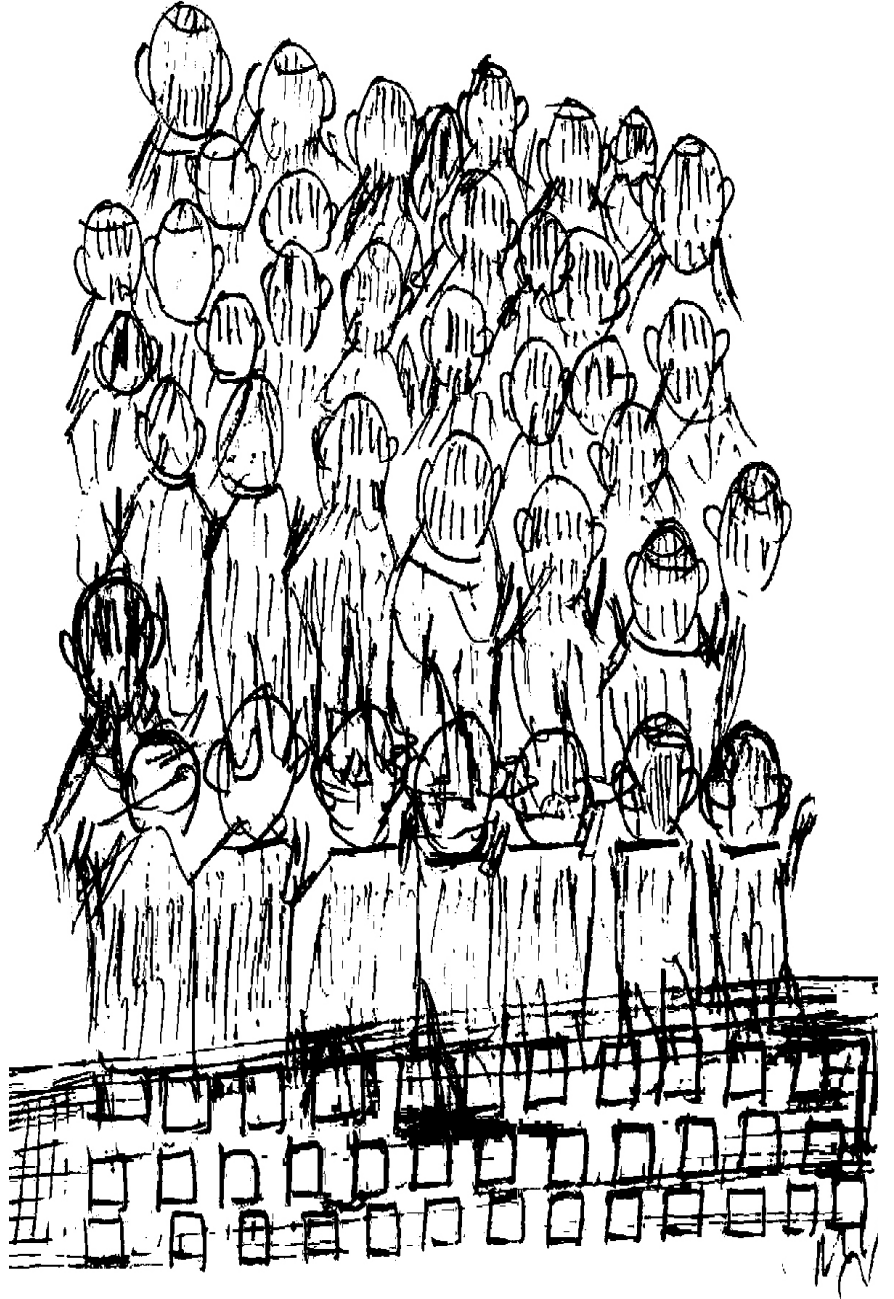
इन किताबों की सामग्री में वह गुंजाइश नहीं दिखती जिससे दूसरे विषयों में घुसपैठ की जा सके, हिन्दी के पीरियड में दूसरे अनुशासनों की चर्चा हो, और हिन्दी का पीरियड तुकबंदी वाली कविताओं और हद तक सूखी कहानियों से बंद घेरे की जगह सौ-सौ खिड़कियों वाली जगह बन सके।

इन किताबों का अधिकांश साहित्य 1950 के आसपास या उससे पहले रचा गया है। कितने ही पाठों में कुछ सिखा देने की प्रवृत्ति इस कदर हावी है कि जैसे किताबें सीख देने के एकमात्र उद्देश्य से गढ़ी गई हों। इसी क्रम में गरीबों के प्रति दयाभाव से लबालब सामग्री की भी कमी नहीं है। सामग्री में गरीबों के प्रति दया भाव के इस रूप में आने से 'बराबरी' के उस भाव को चोट पहुंचती है जिसकी शपथ हम इस संविधान में ले चुके हैं।

पुरानी सामग्री के चलते भाषा कहीं-कहीं अत्यंत दुरूह हो गई है। मसलन- 'रोहणी अपने मकान की छत पर चढ़कर आजानुलंबित केश-राशि सुखा रही थी।'

हिन्दी और हिन्दी समाज पिछले साठ वर्षों में कहां से कहां पहुंच गया है। पिछले पंद्रह सालों में दुनिया में कई बदलाव आए हैं। हिंदी के साहित्य में उसके चिह्न स्पष्ट रूप से दिखते हैं। आज की समस्याएं, आज की चुनौतियां, आज के सपने किसी भी पहलू को ले लीजिए, इसकी एक झलक भी आपको हिंदी की इन किताबों में नहीं मिलेगी। जबकि - साहित्य समाज का दर्पण है - आज भी सबसे ज्यादा बोला जाने वाला जुमला होगा। क्या अतीत में किसी खास उद्देश्य के तहत लिखी गई भावनाओं से लबरेज कविता, कहानियों को इस तरह हवा पानी देते रहना उचित है ? हिन्दी में साहित्य प्रभाग में हिन्दी के पिछले पचास-साठ साल के नामचीन साहित्यकारों की एकाध रचना ही मिल पाएगी। कुछ गिने चुने नाम अक्सर इन किताबों में प्रेरणा देने का काम कर रहे हैं। अतीत के कई अन्य नायकों और वर्तमान के नायकों के बारे में हम मौन क्यों हैं ? सुनीता राव, मेघा पाटकर, लता मंगेशकर, अमृता शेरगिल, अंजू बी जॉर्ज,

सानिया मिर्जा, के. आर. नारायणन, एम. एफ. हुसैन जैसे तमाम नायक हैं जिन्होंने अनगिनत बाधाओं को पारकर अपने-अपने क्षेत्र में एक अहम मुकाम हासिल किया है। आज इन किताबों में कई पन्नों पर पसरी देशभक्ति की कितनी कविताएं हैं जिन्हें क्या उस जमाने की अच्छी खासी समझ के बगैर समझा जा सकता है ? क्या उस सुदूर अतीत की इस तमाम सामग्री से बच्चे खुद को जोड़ पाते



होंगे ? क्या महज तुकबंदियों वाली रूखी कविताएं बच्चों में कविता-साहित्य के प्रति अरुचि पैदा नहीं करती होंगी ? उपमाओं, बिम्बों से लबरेज ये कविताएं एक तरह का उन्माद रोपती सी लगती हैं। इसी उन्माद का उपयोग एक विशेष वर्ग अपने हित के लिए समय-समय पर करता आया है। देशभक्ति के मायने दुश्मन को सबक सिखाने के भाव वाली खून खौलाने वाली कविताओं में ही क्यों सिमट गए हैं ? देशभक्ति की कविताओं को तो छोड़िए, प्रार्थनाओं तक में खुद को बलिदान करने से रती भर कम पर काम नहीं चलता दिखता है। इन कविताओं से गुजरते हुए जीवन असार और निरर्थक लगने लग सकता है।

सिर्फ कक्षा-पांच की एक छोटी-सी किताब में इस खास और पुण्य प्रवृत्ति के उदाहरण कई पाठों में मौजूद हैं -

मुझे त्याग दो देश के हित मरूं मैं (प्रार्थना कक्षा - पांच)

मृत्यु आज ही आ जावे (मेरी भावना, कक्षा - पांच)

थाल में लाया सजाकर भाल जब भी

कर दया स्वीकार लेना वह समर्पण

रक्त का कण-कण समर्पित

स्वप्न अर्पित, प्रश्न अर्पित (और भी दूँ, कक्षा - पांच)

हंस-हंस कौन वहां होता कुर्बान (अभिलाषा, कक्षा - पांच)

इस क्षणभंगुर संसार में संपत्ति, पद, मर्यादा सब नष्ट हो जाते हैं। (भाई को पत्र, कक्षा - पांच)

जिन्हें प्राण देने का चाव हो ...

हम हंसते-हंसते मरेंगे और बहुतों को मारकर मरेंगे (राखी का मूल्य, कक्षा-पांच)

यह खून का संगम कितना पवित्र बन गया है ... तथा .....  
यह खून इस जिले की सबसे बड़ी पैदावार है।

तथा वर्षों से यही एक ख्वाब तो उसका पीछा कर रहा था ... वतन के लिए मरना ( वीर अब्दुल हमीद, कक्षा - पांच)

तुम अपने मोर्चे पर जाओ - हम आज के दिन के लिए ही जन्म लेते हैं ... मुझे इस बात की परवाह नहीं कि वह मेरे जीवनकाल में आता है कि नहीं (नींव का पत्थर, कक्षा - पांच)।

जन्म भूमि पर मिटने वाले वीरों ने अपना उत्सर्ग कर दिया था

आज्ञा हो तो इन चरणों में अपना शीश चढ़ाकर पद प्रक्षालन कर लूँ

कहीं धड़ पड़ा हुआ था कहीं मस्तक...

ओह ऐसे निरीह जीवन पर इतना गर्व (विद्रोही शक्तिसिंह, कक्षा - पांच)

इन किताबों के पाठ ऐसे वाक्यों से भरे पड़े हैं। इनसे उक्त चिंता के बारे में एक अंदाजा लगाया जा सकता है। क्या एक व्यक्ति जो ठीक-ठीक टैक्स देता है, या जो ईमानदारी से अपना काम करता है, स्कूल में पढ़ाता है, रेल चलाता है, जूते तैयार करता है, कपड़े धोता है या जो कपड़े सिलता है, देश के काम नहीं आ रहा है ?

हिन्दी की इन किताबों में शामिल कई पाठों में एक तो उस भाषाई गुंजाइश की कमी दिखती है जो बच्चों में सोचने समझने, रुककर विश्लेषण करने, सवाल उठाने इत्यादि की 'देख' पैदा करती है। (उक्त उदाहरणों में एक जगह स्वप्न अर्पित प्रश्न अर्पित आया है। प्रश्न अर्पित करने के क्या मायने होंगे ?) अधिकांश सामग्री में जो कहा जा रहा है उसे उसी शकल में आत्मसात करने का एक दबाव-सा बनता दिखाई देता है। और कुछ पाठों में - इस सामग्री को इसी रूप में ग्रहण करना - एक मूल्य की तरह प्रमोट किया गया है।

इन किताबों में विभिन्न मुद्दों को लेकर अपेक्षित संवेदनशीलता नहीं दिखती है। लेकिन 'तथाकथित' संवेदनशीलता हर पाठ, हर पंक्ति में छलक-छलक पड़ती है। जैसे -गरीबों पर दया करो, सदा सच बोलो, बड़ों का आदर करो, उनका कहा मानो, दूसरों के लिए त्याग करो ...। कोई बच्चा सिर्फ इसलिए भी बुरा हो सकता है कि वह बड़ों के खाना खत्म करने के बाद खाना खाता रहे या साथ चल रहे बड़ों के आगे चलने लगे (शिष्टाचार, कक्षा-पांच)। ऐसे कई प्रसंग मिलेंगे जिनमें ये चौकस किताबें मौका मिलते ही कुछ न कुछ सिखाकर ही दम लेती हैं। तथा बिना तर्क के किसी बात को मनवाने के लिए उसे शिष्टाचार या धार्मिक उसूलों से जोड़ देती हैं।

सीख नामक एक पाठ (चौथी कक्षा) में तो सीखता है कि नहीं के अंदाज में सीखें दी गई हैं। जो कुछ दिखे सब से कुछ न कुछ सीखने का आग्रह है। कहीं-कहीं तो इन सीखों के ढांचे बेतुके लगने लगते हैं। साथ ही कुछ सीखों में किसी धर्म विशेष के मूल्यों और सीख की पतली रेखा का उल्लंघन होता दिखता है -

तरू की झुकी डालियों से, नित सीखो शीश झुकाना

दूध और पानी से सीखो मिलना और मिलाना

हमारे समाज में दूध और पानी का मिलना किस तरह लिया जाता है, सर्वविदित है। कितने घरों में सुबह की शुरूआत दूधवाले



से इन्हीं दो चीजों के मिलावट-विमर्श को लेकर होती है। कौन होगा जो इस तरह की मिलावट से मिलना और मिलाना सीखना चाहेगा ?

आज शिक्षक की भूमिका बदली है। वह अब शोधकर्ता विद्यार्थी का निदेशक है। विद्यार्थी के बराबर कद वाला उसका दोस्त है जिससे वह बिना हिचक सवाल कर सकता है। जहां विद्यार्थी व शिक्षक मिलकर कुछ सीखते हैं। वहां भी आज हम सवर्ण छात्रों के गुरुकुलों व गुरुभक्ति की भावना से लथपथ पाठ पढ़ाए जा रहे हैं। ऐसे गुरुकुलों के पाठ जहां गुरु का वचन पत्थर की लकीर है। जो गुरु ने कह दिया, कह दिया। जहां विद्यार्थी गुरु का साथी, मित्र, ज्ञान की खोज का हमसफर नहीं है। इस पाठ (आरूणि की गुरुभक्ति, कक्षा-पांच) के निर्देशों में भी यह स्पष्ट लिखा गया है कि इस पाठ का उद्देश्य गुरुभक्ति व आज्ञाकारिता की भावना विकसित करना है। इसी पाठ के एक अभ्यास में गुरुभक्ति, आज्ञाकारी, गंदा इत्यादि को गुण और अवगुणों में बांटने का कहा गया है। कुछ और भी पाठ हैं जिनमें शिष्य से बिना सवाल किए गुरुजी के अनुसार चलते जाने से महान बन जाने का रास्ता दिखाया गया है। गुरु और शिष्य के बीच के कुछ संवाद पढ़िए - यदि तू मेरे कहे अनुसार आचरण करेगा तो तुझे ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं (स्वामी विवेकानंद, कक्षा-पांच)।

देख मेरी बात मान, नहीं तो पीछे पछताएगा तथा

हाय, मैंने गुरुजी का कहना न माना, यह उसी का फल है।  
(अंधेर नगरी, कक्षा-पांच)

क्या इन कविताओं में व्याप्त शिक्षक से विद्यार्थी के साथ किसी ऐसे रिश्ते की संभावना की उम्मीद की जा सकती है जिसमें वह अपने मन की तमाम गुत्थियां अपने शिक्षक के सामने खोल सके ? उसे क्या पसंद है, क्या बिल्कुल नापसंद है, शिक्षक से कह सके ? उसने स्कूल आते समय सड़क के इर्द-गिर्द क्या-क्या देखा ? और कौन-कौन सी फालतू समझी जाने वाली चीजें उसे मजेदार लगीं ? यहां तक कि वो अपना बस्ता खोलकर वे चीजें शिक्षक को दिखाने की हिम्मत कर सके। क्या गुरु-शिष्य के रिश्ते पर ऐसी सामग्री लिखी ही नहीं गई ? इस प्रकार की सामग्री में शिक्षक के अपने पूर्वाग्रह हावी होने का डर बना रहता है। और बहुत आसानी से इस तरह की सामग्री की व्याख्या किसी धर्म विशेष के चश्मे से करने की गुंजाइश रहती है। इस क्रम में एक कविता है -

नर हो न निराश करो मन को (वैसे, नारियों के लिए क्या आदेश है महाराज !)

इस कविता में शिक्षक द्वारा अपने पूर्वाग्रह थोपे जाने की पूरी गुंजाइश है।

खासकर तब जब कविता में कुछ ऐसे सवाल पूछे जा रहे हों, जैसे-

अर्थपूर्ण जीवन क्या है ?

सब जाय अभी पर मान रहे।

यह हम किस 'मान' की बात कर रहे हैं ?

यही कविता आगे चलकर तमाम दुर्दशाओं के लिए पीड़ित व्यक्ति को ही जिम्मेदार ठहराती है। आज रोजगार की क्या स्थिति है इसे देखते हुए तो यह कविता और महान हो जाती है।

प्रभु ने तुमको कर दान किए

सब वांछित वस्तु-विधान किए

तुम प्राप्त करो उनको न अहो

फिर है किसका यह दोष कहो।

क्या बात है ! हाथ दिए हैं पांव दिए हैं, और क्या चाहिए ? इन पंक्तियों से उन करोड़ों लोगों को बड़ी राहत मिली होगी जो समझते हैं कि उनके पास अवसर नहीं हैं, जो समझते हैं ये पूरी व्यवस्था (सिस्टम) सिर्फ कुछ लोगों के हितों को साध रही है, जो सोचते हैं कि कहीं इतना भर काम मिल जाए कि कम से कम एक समय रोटी खा सकें। इन पंक्तियों के संदेश ने सरकारों तथा विभिन्न शोषक वर्गों को कितनी सुकून की स्थिति में ला दिया होगा, वे ही जानते हैं।

चाहे वह जेण्डर के पूर्वाग्रह का मसला हो, धर्म, जाति, रंग या समाज में हमारे साथ रह रहे विभिन्न शारीरिक चुनौतियां झेल रहे लोगों का, इन किताबों में इन सभी के प्रति अपेक्षित संवेदनशीलता की कमी लगती है। जेण्डर के पूर्वाग्रह के तो कितने ही उदाहरण मिलेंगे। इन कक्षाओं के अधिकांश पाठों के नायक पुरुष हैं। एक पाठ में स्त्रियां घर की दहलीज नहीं लांघती की तर्ज पर एक स्त्री का वर्णन है जो खिलौने वाले से चिक की आड़ में छुपकर खिलौने लेती है तथा फिर वहीं से पैसे फेंक देती है। (मिठाईवाला कक्षा-पांच) कक्षा-आठ में सुभागी नामक एक पाठ है। इसका उद्देश्य नारी के करुणा, दया इत्यादि पहलुओं को उजागर करना है। लगभग हर किताब में एकाध पाठ ही होगा जिसमें किसी महिला किरदार को अहमियत के साथ पेश किया जा रहा हो। इन किताबों में पुरुष इस कदर छापे हुए हैं कि लगता है ये किताबें पुरुषों के बारे में, पुरुषों के लिए, पुरुषों द्वारा लिखी गई हैं। हालत यह है कि केरल नाम पाठ (कक्षा-आठ) में लेखक ने केरल का लिंग निर्धारण



भी इन्हीं पूर्वाग्रहों के चलते कर दिया है -

केरल प्रकृति का चहेता पुत्र है। यह भारत भर का दुलारा और विदेशों से डालर कमा लाने वाला लाडला है।

कक्षा चार की किताब में एक कविता है- मेरा एक सवाल कौन करेगा मेरा आंगन, हरा-भरा खुशहाल

कैसे सुलझाओगे बोलो मेरा एक सवाल

भारत माता के इस सवाल का उत्तर एक किसान देता है

मैं खेतों में अन्न उगाकर कर दूंगा खुशहाल

मां, मैं हल से हल कर दूंगा तेरा एक सवाल

ऐसे ही भारतमाता अपनी तमाम समस्याएं सामने रखती जाती है और हर बार एक पुरुष भारतमाता से समस्याएं सुलझाने का वादा करता है, सैनिक, मजदूर, विद्यार्थी, शिक्षक और अंत में सब मिलकर

हम सब मिलकर काम करेंगे, तेरे हैं हम लाल,

सदा करेंगे ऊंचा जग में, मां तेरा यह भाल

क्या यह रचना सचमुच शिक्षा, साहित्य का हिस्सा बनने की काबिलियत रखती है ?

इस कविता को कक्षा-चार में खपाने वाले विशेषज्ञों ने पुरुषों के चित्र बनवाकर इस संदेश को पुख्ता भी कर दिया है। यह पाठ 'मेरा एक सवाल' तब और निराश करेगा जब इसे आप निर्देशों की रोशनी में पढ़ेंगे।

समाज के प्रत्येक वर्ग का उत्तरदायित्व समझना

क्या महिलाएं समाज की परिधि से बाहर हैं ?

सामग्री चयन में बरती गई लापरवाही के अलावा निर्देशों को लिखे जाते समय की सतर्कता नहीं बरती गई है। निर्देश कई बार तो पाठ के संदेश को बिल्कुल उलट देते हैं। कई जगह ये निर्देश पूर्वाग्रहों को प्रमाणित करते चलते हैं। आज भी देश की प्रज्ञावान, दृढ़निश्चयी, तेजस्वी एवं निर्भीक युवकों की आवश्यकता है जो देश की...(स्वामी विवेकानंद, कक्षा आठ)।

हर जगह बस युवकों की जरूरत है ? ठीक है भाई साहब।

हार की जीत एक मशहूर कहानी है। कहानी की शुरूआत कुछ इस तरह होती है - मां को अपने बेटे और किसान को अपने लहलाते खेत देखकर जो आनंद आता है वही आनंद बाबा भारती को अपने घोड़े को देखकर आता था। (कक्षा-छह)

घोड़े को बेटे के बराबर दिखाकर एक जगह बाजी मारी पर एक जगह गच्चा भी खा गए। क्या इन किताबों की किसी कहानी में बेटे को देखकर मां को इतना मजा आया है ? इन किताबों में शामिल समूचे साहित्य में कुछ ही रचनाएं होंगी जो इन सब मसलों पर संवेदनशील लगेंगी। अभ्यासों में भी इन्हीं रूढ़ियों को मजबूत किया गया लगता है।

जैसे-

काष्ठक से सही शब्द चुनकर खाली स्थान भरने वाले इस अभ्यास में।

(लड़के, लड़का) फुटबॉल खेल रहे थे।

मां (रोटी, रोटियां) बना रही थी। (पृष्ठ 89, कक्षा-पांच)

रंग या वर्ण स्टीरियोटाइप भी इन किताबों में व्याप्त है।

कक्षा चार में एक कविता आजादी है। इसमें आजादी को क्या-क्या कहा गया है आप भी पढ़ें -

जीवन में सबसे सुंदर क्या है ? आजादी है।

जीवन में सबसे पावन क्या है ? आजादी है।

जीवन में सबसे मनभावन क्या है ? आजादी है।

इस कविता की आखिरी पंक्ति भी कहती है

छोटे और बड़े, गोरे-काले का भेद फिजूल है लेकिन इस एक पंक्ति से आप यह आशा मत लगा बैठिए कि इन किताबों में इस मूल्य के प्रति संवेदनशीलता बरती गई होगी।

वैसे मैं सुंदर नहीं हूं एकदम काली कलूटी हूं (सड़क की आत्मकथा, कक्षा-तीन)

एक कविता में कोयल कहती है-

मैं काली भले ही हूं पर मीठा गाती हूं

काली मिर्च जो देखने में काली कलूटी लगती है। (केरल कक्षा-आठ)

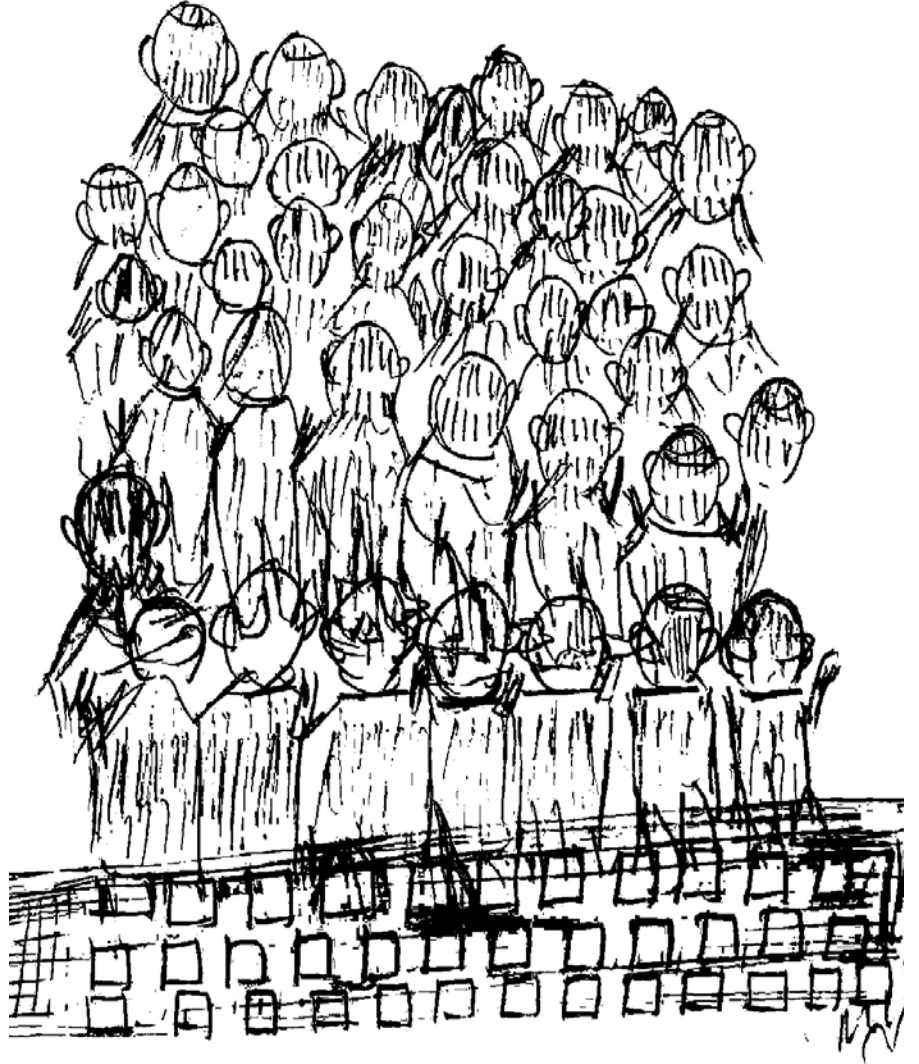
मेरी एक मित्र अपने बचपन के दिनों को याद करती हैं - तुम्हें आश्चर्य होगा, बात उन दिनों की है जब मैं छठी-सातवीं में पढ़ती थी। यह बात तब मुझे अक्सर उलझन में डाल दिया करती थी कि बड़ी-बड़ी कॉलोनियों के सभी लोग गोरे क्यों होते हैं। कई दिनों मैं इसी ऊहापोह में रही। काफी दिनों बाद मेरे हाथ ये बात लगी कि दरअसल जो लोग धनी होते हैं वे गोरे होते हैं या कि गोरे धनी होते हैं। आज बड़ी हंसी आती है कि ये इत्ती सी बात...। उन दिनों लगने लगा था कि सांवले पैसे वाले नहीं होते। तब सांवलेपन का



यह पक्ष मुझे खूब कचोटता था।

क्या इन किताबों से यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि ये इन मसलों पर संवाद करें ? सालों-साल के पूर्वाग्रहों को तोड़ें ? उनकी खिलाफत की हिम्मत पैदा करें ? यह सब करना तो दूर ये किताबें रूढ़ियों को स्थापित करती लगती हैं। अब्बू खां की बकरी नामक एक पाठ (कक्षा-चार ) में शामिल किया गया है। इस पाठ में अब्बू खां बकरियां खरीदते रहते हैं। इस बार वे जो बकरी लेकर आए हैं वह बहुत खूबसूरत है, (क्या 34, 21, 34 वाली थी) जाहिर है अब्बू उसे प्यार भी करते होंगे। कहीं भाग न जाए इसके लिए एक बाड़ा भी बनवाते हैं। जरा गौर कीजिए एक बकरी के खूबसूरत होने के क्या मायने हैं ?

खूबसूरती नाम की यही चिड़िया आज हजारों करोड़ों की इण्डस्ट्री में तब्दील हो चुकी है। जिस खूबसूरती को हम कभी अपरिभाषित छोड़ आए थे आज तमाम कंपनियां उसे अपने फायदे के लिए इस्तेमाल कर रही हैं। सुंदर होने के लिए किस साबुन से नहाकर कौन-सी क्रीम लगाना है यह सब जानकारी उपलब्ध है। पाठ्यपुस्तकें हालांकि साबुन का नाम नहीं बता रही हैं, पर रोज नहाने और धुले कपड़े पहनने के मूल्य तो इनमें भी प्रमुखता से आ रहे हैं। गौरतलब है कि आज अधिकांशतया सरकारी और निम्न दर्जे की निजी स्कूल ही इन किताबों का उपयोग बड़े पैमाने पर कर रहे हैं। इनमें पढ़ने वाले बच्चे उसी वर्ग से है जहां एक परिवार को दो दिन में बामुश्किल दो-तीन बाल्टी पानी (रोज मिले जरूरी नहीं) मिल पाता है। वह इन पाठ्यपुस्तकों की मांग को कैसे पूरा करे। पूरी किताब में एक विशिष्ट जीवनशैली का गान दिखता है। यह बात तब और कचोटती है जब आप किसी त्यौहार पर आधारित पाठ पढ़ रहे हों। एकाध पाठ को छोड़कर सभी में त्यौहारों को पूरी तड़क-भड़क और शान से मनाए जाने के विवरण होते हैं। इन किताबों को पढ़ने वाले कितने लोग त्यौहार को



इस भव्यता के साथ मना पाते हैं ? हालांकि इसी गरीब वर्ग को इन किताबों में चप्पे-चप्पे पर दयाभाव हासिल है। गरीबों पर दया करने के कई विवरण हैं। हो सकता है इन किताबों को पढ़कर आपको यह भी लग सकता है कि गरीबों को खाना खिलाकर ही सभी महान लोग महान बने हैं। पूरी की पूरी किताब में दया प्राप्त यह तथाकथित गरीब वर्ग कभी बराबरी का वह दर्जा हासिल नहीं कर पाता जिसका वादा हम संविधान में पचास-पचपन साल पहले कर आए हैं। हार की जीत- जिस कहानी का जिक्र हमने पहले किया था, का एक संवाद इस भाव को समझने में और मदद कर सकता है। हुआ यह है कि बाबा भारती अपने घोड़े से कहीं जा रहे हैं। रास्ते में एक अपाहिज उनसे मदद की गुहार करता है। अपाहिज के वेष में असल



में डाकू खड़सिंह है जो बहुत दिनों से बाबा का यह घोड़ा हथियाना चाहता है। अपाहिज की मदद को बाबा रुकते हैं। अपाहिज घोड़े पर सवार होते ही घोड़े को लेकर भागने लगता है। बाबा उसे आवाज देते हैं और कहते हैं कि वह बस एक बात का ख्याल रखे और घोड़ा हमेशा अपने पास रखे। यह ख्याल मजेदार चीज है।

इस घटना को लोगों के सामने प्रकट न करना, लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर विश्वास नहीं करेंगे।

यहां उनके साथ धोखाधड़ी डाकू के वेष में एक अपाहिज ने की थी। लेकिन बाबा को मालूम है कि भरोसा गरीबों पर से उठेगा। यह स्थिति आज भी है। अगर किसी तथाकथित संप्रात कॉलोनी में चोरी हो जाए तो सबसे पहले पुलिस उस कॉलोनी के आसपास की झुगियों में धरपकड़ करती है। यही वर्ग पुलिस के लिए हमेशा से ऊपरी दबाव से बच निकलने के लिए मजबूरी के अपराधी उपलब्ध करवाता आया है। इसलिए जब भी कुछ होगा भरोसा गरीबों पर से ही उठेगा।

इन्हीं में से एक और गरीब की कहानी सुनिए। यह है कक्षा-तीन की भारती में शामिल गुब्बारेवाला। इस कहानी में एक गुब्बारेवाला है। दोपहर हो चुकी है। उसका एक भी गुब्बारा नहीं बिका है। निराशा और धूप से वह चकनाचूर हो चुका है। इतने में एक कार उसके पास आकर रुकती है। कार में से एक व्यक्ति उतरते हैं। जब उन्हें उसकी स्थिति का पता चलता है तो वे उसके सारे गुब्बारे खरीद लेते हैं और उन्हें पास ही खेल रहे बच्चों में बांट देते हैं। कहानी खत्म होने से पहले बताती है कि वे महान व्यक्ति कौन थे।

इस कहानी से की जा रही अपेक्षा पर गौर करें - फेरीवालों के जीवन की संवेदना को समझना। कहानी से मुझे बस इतनी-सी शिकायत है कि यह थोड़ा आगे बढ़कर यह क्यों नहीं बताती कि उस गुब्बारे वाले ने क्या किया? उन व्यक्ति से यह पूछा कि वे कल उसे कहां मिलेंगे या उन्हें विनम्रतापूर्वक उनके पैसे लौटा दिए?

क्या यह कहानी फेरीवालों के जीवन की संवेदनाओं को समझने की औकात रखती है? आज जमाना जिस रफतार से कुछ खास लोगों की मुट्ठी में बंद होता जा रहा है जब कुछ खास लोग एक ऐसी दुनिया बनाने को बेताब हैं जहां वे जो चाहेंगे वह होगा। लोगों की तकदीरें उनकी सील-ठप्पों से बनेंगी। वे बताएंगे कौन इस दुनिया में जीने लायक है। कुल मिलाकर यह कि इस तरह के फेरी-फारे वालों के लिए आने वाले समय में कोई जगह नहीं रहने वाली।

इतनी बड़ी समस्या का यह कहानी अतिसाधारणीकरण करती है ?

मध्यप्रदेश की आबादी के लगभग चालीस फीसदी लोग अनुसूचित जाति या जनजाति के दायरे में आते हैं। न तो उनके परिवेश की सामग्री इन किताबों में दिखती है न ही स्थानीय शब्दों को इन किताबों में जगह मिली है। ये किताबें मानक हिन्दी के फेर में पड़ गई लगती हैं।

कक्षा पांच में अम्बेडकर पर एक पाठ है जो इस वर्ग को, इन किताबों में हुए सफाए से बचाए रखता है। लेकिन इस पाठ में भी लेखक यह तय नहीं कर पाते हैं कि अम्बेडकर अछूत थे या अछूत समझे जाते थे।

वे महार जाति के अछूत थे

उन्हें अछूत होने के कारण सब लड़कों से दूर रखा जाता था।

हद तो तब होती है जब लेखक इस लपेटे में कुष्ठ रोग की चुनौती झेल रहे लोगों को भी ले लेता है।

अधीनस्थ कर्मचारी उनसे कोढ़ी की तरह घृणा करते थे।

एक ओर तो सरकार करोड़ों रुपए खर्च करके तमाम सूचना माध्यम के जरिए घण्टों पोंगा बजाने में लगी है कि कुष्ठ छूआछूत से फैलने वाला रोग नहीं है। कुष्ठ का उपचार अब बहुत आसान है। और दूसरी तरफ ये किताबें हैं जो अभी भी कुष्ठ रोगियों को बखशने के मूड में नहीं दिखती।

हिन्दी के दुरूह होने की बात हम पहले भी कर चुके हैं। लेकिन अर्थ के अनर्थ के भी दर्जनों मामले देखे जा सकते हैं। जैसे, आरूणि की गुरुभक्ति कक्षा-पांच, का पहला वाक्य है-हजारों वर्ष पहले भारत में आज की तरह पाठशालाएं नहीं थीं। लेखक कहना तो चाहते थे कि हजारों साल पहले वैसे स्कूल नहीं थे जैसे आज हैं। सरदार पटेल के व्यक्तित्व नामक एक पाठ में सरदार पटेल के बारे में किताब कहती है - 'उनका सम्मान इसलिए नहीं किया जाता था कि आप उनका सम्मान करना चाहते थे, वरन इसलिए किया जाता था कि आपको उनका सम्मान करना ही पड़ता था। उनको केवल एक व्यक्ति की निंदा या प्रशंसा की चिंता रहती थी। वे गांधीजी थे।' क्या सचमुच सरदार पटेल के बारे में किताब यही कहना चाहती है? वे गांधी जी थे, यानी? केरल नामक एक पाठ (कक्षा-आठ) में लेखक महिला - पुरुष अनुपात इस तरह बताते हैं - केरल की कुल आबादी सवा दो करोड़ है। जिनमें प्रत्येक हजार पुरुषों के पीछे 1170 महिलाएं हैं। इस पीछे से क्या मतलब है? हालांकि इस आंकड़े को विभिन्न जगहों पर लिखे जाने का सौभाग्य प्राप्त है। यही बात एक और स्तर पर भी दिखती है जहां



किताब में किसी खास मूल्य के प्रति संवेदनशीलता पैदा करने के लिए गढ़े गए पाठ से कुछ और ध्वनि निकलती दिखाई देती है। इसका एक सटीक उदाहरण हमें स्वावलंबन नामक पाठ में मिलता है। पाठ की शुरुआत में ही बताया गया है स्वावलंबन यानी - अपना कार्य स्वयं करना। इसकी दूसरी पंक्ति यह है -

स्वाभिमानी व्यक्ति अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए ऐसा कोई काम नहीं करता, जिसके कारण उसे लज्जित होना पड़े। इस पंक्ति से लेखक क्या बताना चाहते हैं। वह स्वावलंबन से कहाँ जुड़ता है। खैर ! चलिए इस प्रेरक पाठ के किस्सों पर चलते हैं। पहले किस्से को महात्मा गांधी के जीवन की एक घटना बताया गया है।

किस्सा यह है कि वर्धा आश्रम में एक बार शौचालय साफ करने की बारी कस्तूरबा की है। वे इस काम से मना कर देती हैं। बापू कहते हैं कि स्वावलंबन तो आश्रम का नियम है। यदि तुम स्वावलंबी नहीं बनना चाहती तो आश्रम छोड़ दो। तुम्हारा निर्वाह यहाँ नहीं हो सकेगा। आखिरकार कस्तूरबा को स्वावलंबन का पाठ सीखना ही पड़ा।

अगर यह किस्सा लेखक के लिखने संबंधी स्वावलंबन का नतीजा नहीं है यानी सचमुच घटित हुआ है तो यह आखिरकार कस्तूरबा को स्वावलंबन का पाठ सीखना ही पड़ा। इस स्वावलंबन के मूल्य पर हावी हो जाता है। किसी दूसरे विचार के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ना तो आज भी सबसे बड़ी त्रासदी के रूप में सामने आ रहा है। क्योंकि कस्तूरबा का आश्रम छोड़ने का मतलब या तुम्हारा यहाँ निर्वाह न हो सकेगा का मतलब यह है कि कस्तूरबा या तो यह बात मान लें या फिर ...। और इस किस्से के आखिरी वाक्य में आखिरकार का आना तो उसी समय तय हो गया था जब वहाँ रहने की शर्त एक खास किस्म के स्वावलंबन के रूप में रखी गई। हालांकि हमें स्वावलंबन को आज के परिप्रेक्ष्य में भी देख लेना चाहिए। स्वावलंबन को इस अर्थ में लेने से उन करोड़ों लोगों के रोजगार का क्या होगा।

दूसरा किस्सा लालबहादुर शास्त्री के बारे में है (बताया जा रहा है)। वे एक बार एक मेला देखने अपनी मित्र मण्डली के साथ गए थे। गंगा पार। मेले में उनके सभी पैसे खर्च हो गए। जाहिर है उनके पास वापस जाने के लिए यानी नाव की उतराई देने के लिए पैसे नहीं थे। वे जानबूझकर पीछे रह जाते हैं। और सब दोस्तों के चले जाने के बाद गंगा तैर कर पार लगते हैं।

इस किस्से में शास्त्रीजी तो पार लग गए, पर स्वावलंबन का

अर्थ डूब गया। क्या एक स्वावलंबी इतना खर्चालु या लापरवाह होता है कि उसे अपने पास किराए के पैसे बचाने का भी होश नहीं रहता। और वह अपने दोस्तों से एक छोटी-सी मदद लेने के बजाए अपने प्राण दाव पर लगा देता है। यहाँ उधार लेने से पाप लगता है किस्म के मूल्य की बू आती है। यहाँ एक बार फिर यह मूल्य उस वर्ग के मूल्यों से मेल नहीं खाता जो बड़े पैमाने पर इन किताबों का इस्तेमाल कर रहा है। यहाँ एक बार फिर ये किताबें उस वर्ग के बच्चे के मन में तुच्छ होने का भाव पैदा करने की कोशिश करती हैं जो अपने घर या मौहल्ले में इस तरह के लेन-देन देखता रहता है। इसी लेन-देन को ये किताब आत्म-सम्मान, आत्म-स्वाभिमान इत्यादि-इत्यादि से जोड़ने की कोशिश करती लगती है।

इन किताबों को पढ़ते हुए लगा कि ये किताबें तुरत-फुरत में उपलब्ध सामग्री से बिना किसी खास विचार-विमर्श के तैयार की गई हैं। साहित्य प्रभाग में गिने-चुने बड़े-बड़े नामों पर अक्सर सहमति बन जाया करती है। इससे नाम के फेर में कई बार दायम दर्जे की रचनाएं चुन ली जाती हैं। समकालीन साहित्य को हम कब पाठ्यपुस्तकों का हिस्सा बनाएंगे ? आज के समय, आज की समस्याओं, चुनौतियों पर बच्चों से कब बात करेंगे ? क्या आज लिखी जा रही सामग्री से बच्चे ज्यादा जुड़ाव महसूस नहीं करेंगे ? हम बार-बार उन्हें सुदूर अतीत में क्यों घसीट ले जाना चाहते हैं ? क्या बच्चों को बताने के लिए हमारे आज के पास कुछ नहीं है ? क्या किताबें तैयार करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाना चाहिए कि ये किताबें कौन, कहाँ इस्तेमाल करेगा ? हिन्दी यानी क्या ? क्या सिर्फ वह जो हम सौ-सौ साल पहले रच आए हैं ? हिन्दी से अनुवाद के जरिए जुड़ते जा रहे साहित्य, हिन्दी प्रदेशों की अन्य भाषाओं (आप बोली कह लीजिए), मसलन मध्यप्रदेश की बुन्देलखण्डी, मालवी आदि के शब्द या साहित्य हिन्दी के दायरे से बाहर हैं ? तुक-साधने के एकमात्र गुण वाली रचनाएं कविताएं हैं ? हां, और नई कविताओं और कहानियों का क्या हुआ ? क्या चयन की इस लापरवाही का इन किताबों को इस्तेमाल कर रहे वर्ग की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक औकात से कोई जुड़ाव है ? आखिर ये किताबें किस तरह की दुनिया के निर्माण में लगी हैं। ◆

